ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 201-203
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-8, No.-II, Issues-IX YEAR- Dec-2017

आचार्य भरत का रस सिद्धांत

डॉ0 वंदना पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, गोकुलदास हिंदू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद (उ0प्र0) भारत

'रस काव्य का प्राण तत्व है और इस रस को आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ब्रह्मानन्द सहोदर (सदृश) स्वीकल किया गया है। आनन्द या रसास्वादन ही रस कहा जाता है।

'रस्यते आस्वाद्यते रसः, रस्यते अनेन इति रसः, रसति रसयति वा रसः, रसनं रसः आस्वादः ।"

काव्य का उद्देश्य मनुष्य के जीवन में आये हुये वर्तमान दुःखों को दूरकर तात्कालिक आनन्द प्रदान करना है। काव्यानन्द साक्षात् रूप से परिलक्षित होता है, इसलिए सावधिक होकर श्रोता पाठक या दर्शक को तमोगुण एवं रजोगुण मुक्त कराता है। मनुष्य के पास दश इन्द्रियाँ हैं, ये कभी भी अपने प्रभाव से किसी व्यक्ति को विरत नहीं रहने देते है। दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुकरण सरल एवं सहज नहीं होता है, यदि किसी ने इन सिद्धान्तों का अनुपालन किया भी तो ये इन्द्रिय सतत विद्रोह करते रहते हैं। दूसरी ओर इन सांसारिक भोग्य पदार्थों का परित्याग कही न कहीं पलायन का सङ्केत करता है। यही कारण है कि भारतीय प्राचीन आश्रम–व्यवस्था में विवाह करके गृहस्थ आश्रम में रहने को श्रेष्ठ माना गया है। हमारे मनीषियों ने "आश्रमात् आश्रमं गत्वा भुक्त भोगो जितेन्द्रियः" की शिक्षा बहुत पहले ही दी थी। शास्त्र में इस बात को स्पष्ट रूप से बताया गया है कि गृहस्थ को छोड़कर यदि कोई व्यक्ति मोक्ष का यत्न करता है तो उसके लिए निरन्तर इन्द्रिय को शमन करना कठिन हो जाता है। यदि परिस्थिति वश वह पुनः गृहस्थ बन जाता है, तो उसका यह कार्य उसे पंतित बना देता है। यदि वह गृहस्थ नहीं बनकर किसी अन्य माध्यम से इन्द्रिय को आनन्दित करने का प्रयास करता है, तो उसे समाज में महापतित कहा जाता। है। इस प्रकार के उदाहरण प्रायः आज समाज में अधिक देखा जाता है।

काव्य की विशिष्टता इसलिए भी प्रतीत होती है कि काव्य में इन दोनों ही पक्षों का अनुकरण दिखाया जाता है। लोक–व्यवहार में एक छोटा–सा परिहास भी कष्टप्रद होता है, परन्तु काव्य में बहुत बड़ा परिहास भी आनन्ददायक प्रतीत होता है। वस्तुत यह किस प्रकार की रस प्रक्रिया है? इसके क्या–क्या तत्त्व है? इन सभी बातों को ठीक–ठीक समझकर अवश्य ही ज्ञानवृद्धि होती है।

क्योंकि नाट्य–शास्त्र के तत्त्वों की जानकारी के बिना भी नाट्य देखना अच्छा लगता है। आज उसी का विकसित रूप सिनेमा है, जो जनमानस के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है। काव्य सुनना और नाट्य देखना निश्चित रूप से लोगों को मनोरञ्जक लगता है। ये काव्य प्रविधियाँ सामाजिक के सम्पर्क में आनेवाले शोक, कष्ट, परेशानी, कठिनाईयों वियोग, विक्षोभ, तृष्णा, लोभ इत्यादि को कुछ समय के लिए सम्पर्क शून्य कर देता है। ये सभी भाव सामाजिक के अन्दर रजस् एवम् तमस के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं और सामाजिक को उद्वेलित करते हैं। इन सभी भावों की सावधिक मुक्ति ही तो रसास्वाद है। अतएव उत्सुकता का विषय कि रसास्वाद है क्या? इस प्रश्न के समाधान में जो भी उपलब्ध साक्ष्य है, उनमें सर्वप्रथम आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र है। आचार्य भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में रस निस्पत्ति की प्रक्रिया को बताने के लिए एक वाक्य का प्रयोग किया है

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्वसनिष्पत्तिः" ।

रस सूत्र में किये गये शब्दों का विश्लेषण करना एवं आचार्य भरत के विचारों को समझना आवश्यक है। भरत ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे निम्न हैं–

'भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, संयोगात, रस और निष्पत्ति।' भाव दृ भावो मनसो विकारः ।

मन के विकार को भाव कहते हैं। आचार्य भरत के अनुसार वाद, अर्थ, तथा सत्त्व से युक्त काव्यार्थ को व्यक्त करना ही भाव है, अथवा रस के व्यञ्जक सामाग्री ही भाव है। भाव प्रायः तीन अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

1. प्रधानता से व्यञ्जित निर्वेदादि सञ्चारी ।
2. देवादिविषयक रति ।
3. मात्र उदबुद्ध स्थायी भाव ।

भाव– स्थायी और अस्थायी दो प्रकार का होता है। स्थायी भाव : – आचार्य भरत स्थायी भाव के विषय में कहते हैं

अनुरूपी लेखक

"सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह" ।

स्थायी भाव को रस का प्रमुख अङ्ग माना गया है। किसी भी प्राणी के अन्तःकरण में निश्चित रूप से विद्यमान जो भाव विरुद्ध या अवरुद्ध किसी भी प्रकार के भावों से समाप्त नहीं किया जा सके, उसे ही स्थायी भाव कहा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार यही स्थायीभाव अभिव्यक्त होकर रस की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। आचार्य भरत के अनुसार स्थायी भावों की संख्या अभिनय (नाट्य) की दृष्टि से आठ है, किन्तु काव्य में शम या निर्वेद नामक नौवें स्थायी भाव को भी स्वीकार किया जाता है।

स्थायी भाव – रति हास, शोक, जुगुप्सा, उत्साह, क्रोध, भय, विश्मय और शम। अस्थायीभाव :– स्थायीभाव तीन प्रकार का होता है। विभाव अनुभाव और सञ्चारी भाव। संयोग और निष्पत्ति स्थायीभाव और अस्थायीभाव को जोड़नेवाला होता है, जो रसस्वाद की प्रक्रिया को पूर्णता प्राप्त कराता है। संयोग स्थायी भाव रत्यादि के साथ अस्थायी भाव विभावादि का मिलना। निष्पत्ति विभावादि के साथ मिलने पर स्थायी भाव की अभिव्यक्ति जन्य अनुभूति।

स्थायी भाव रति आदि को जो जगा दे, वही मूलतः विभाव कहलाते हैं। अतएव वह रसनिष्पत्ति के लिए हेतु का कार्य करते हैं। विभाव के मुख्यतः दो कार्य होते हैं –

1. चित्त की वृत्ति को जगाना, तथा 2. स्थायी भाव को रस के रूप में आस्वाद्य बनाना।

लौकिक व्यवहार में होने वाले कारण को ही काव्य अथवा नाट्य में विभाव के रूप में जाना जाता है। सूक्ष्म रूप यह दो प्रकार का होता है।

1. आलम्बन और
2. उद्दीपन।

1. आलम्बन– शृंगार रस के परिप्रेक्ष्य में नायक और नायिका दोनों ही एक दूसरे के लिए आलम्बन होते हैं। अर्थात् रस का जो आस्वादन करता है, उसे ही आलम्बन कहते हैं।

2. उद्दीपन– अन्तः करण में जागृत भाव को अनुकूल परिस्थियाँ उपलब्ध होना ही उद्दीपन होता है। अर्थात् आलम्बन विभाव की उपस्थिति के अनन्तर जो भी देश, काल, अवस्था इत्यादि की अनुकूलता प्राप्त होती है। जिससे चित्त में जागृत हुआ स्थायी भाव रस की ओर गतिशील होता है, वे सभी भाव उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। जैसे नायिका और नायक के मिलने पर एकान्त होना, उद्यान, वापी, वर्षा इत्यादि होना। ये प्रायः चार प्रकार के होते हैं

1. आलम्बन के गुण – रूप, यौवन आदि ।
2. आलम्बन की चेष्टायें हाव भाव आदि ।
3. आलम्बन का अलङ्करण –– अङ्गराग, नूपुरादि।
4. तटस्थ चन्द्रमा, मलयानिल आदि ।
5. अनुभाव अनुपश्चात् भवन्ति इति अनुभावाः ।

"अनुभाव्यते अनेन वागङ्गसत्त्वकृतो अभिनयः इति अनुभाव"[3]

विभाव के बाद परस्पर उत्पन्न भावों को एक दूसरे तक अभिप्रेषित करने की प्रक्रिया की अनुभाव है। अर्थात् उदबुद्ध रस के सूचक भाव को ही अनुभाव कहते हैं, इसी भाव के द्वारा रसास्वादन की सूचना प्राप्त होती है। आचार्य भरत के अनुसार अनुभाव चार प्रकार के बताये गये है[4]

1. वाचिक शब्दों के माध्यम से की जाने वाली अभिव्यक्ति को ही वाचिक अनुभाव कहा जाता है।
2. आङ्गिक– शरीर के विभिन्न अगों के द्वारा अपने भावों को व्यक्त करना ही आदिमक अनुभाव है।
3. सात्विक– मुखाकृति के विशेष भावों से की जानेवाली अभिव्यक्ति सात्विक अनुभाव होता है। 4. आहार्य धारण किये गये वस्त्र आभूषणों के माध्यम से की जाने वाली अभिव्यक्ति ।

नायक और नायिका जब एक दूसरे को देखते हैं, तो उसके चित्त में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, उन विकारों की अभिव्यक्ति ही अनुभाव कहलाता है।

4. सञ्चारी भाव – नायक और नायिका के मध्य परस्पर जब उदबुद्ध भाव विशेष रूप से सञ्चरण करने लगता है, तो उसे ही सञ्चारी भाव कहा जाता है। इसी अवस्था में प्राप्त होकर स्थायी भाव रस की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

रस का स्थायी कारण है, इसे व्यभिचारिभाव भी कहा जाता है। यह प्रमुख रूप से स्थायी भाव का उपकारक एवं अन्य भावों को गति प्रदान करने वाला है। नदी में तरङ्ग की तरह आकर जल को बहने की क्षमता प्रदान कर स्वयं लुप्त हो जाता है। अपने सञ्चरण के विशिष्ट गुण के कारण ही यह सञ्चारी भाव कहा जाता है। सञ्चारी भाव की मुख्य चार

विशेषतायें हैं

1. स्थायी भाव को उपकृत कर रसास्वाद तक पहुँचाना।
2. स्थायी भाव के साथ सागर एवं लहर के जैसा सम्बन्ध बनाना।
3. अतिरिक्त सम्वेदनाओं को सहृदयों से दूर रखना। और
4. कभी भी स्थिर नहीं रहना।

मुख्य रूप से सञ्चारिभावों की सङ्ख्या ३३ बतायी गयी है, किन्तु इनकी संख्या में वृद्धि से इन्कार नही किया जा सकता है।

1. विकास – जब चित्त अपनी आकृति में पूर्ण रूप से व्याप्त हो जाता है, तो उसे ही चित्त का विकास कहा जाता है। जैसे प्यार करने की स्थिति में चित्त का भाव।

2. विस्ता – जब चित्त अपने निश्चित स्थान से अधिक जगह लेकर फैल जाता है, तो उसे ही विस्तार कहा जाता है। जैसे युद्ध के समय चित्त की स्थिति।

3. क्षोभ – जब चित्त नियत स्थान से भी कम स्थान में सिकुड़ जाता है, तो उसे क्षोभ कहते हैं। और 4. विशेष : जब चित्त किसी वस्तु को देखने के बाद वहाँ से भागना चाहता है, तो उसे विक्षेप कहा जाता है। जैसे किसी दुर्गन्ध को सूंघकर चित्त की स्थिति।

इन्हीं चारों विकारों के आधार पर रस का स्वरूप निश्चित होता है। अतएव मुख्य रूप से चार ही रस होते हैं, शेष रस को उन्हीं के आधार पर विकसित कहा जा सकता है।

- वीर
- करुण
- बीभत्स
- भयानक
- रौद्र
- हास्य
- अद्भुत
- वात्सल्य.

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब आत्मचौतन्य के ऊपर से सांसारिक विषय रूप अज्ञान का आवरण हट जाता है, तो उस अनावृत चित्त की अनुभूति ही रसास्वाद है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र अध्याय 6. सूत्र 2.
2. वागंगसत्त्वोपेतान्काव्यार्थान्भावयंतीति भावा इति। नाट्यशास्त्र, अध्याय –7, पृष्ठ– – 404–405.
3. नाट्यशास्त्र 768.
4. नाट्यशास्त्र – अध्याय 7.

*****